Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X **Pg. 146-149**

हिन्दू और ईसाई धर्म में ईश्वर की एकता का दार्शनिक विवेचन

अजीत पति तिवारी
शोधार्थी
दर्शनशास्त्र विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय. गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

Accepted: 09/03/2024
Published: 17/03/2024 ***DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.17511169***

शोध सारांश

यह शोध-पत्र हिंदू धर्म और ईसाई धर्म में ईश्वर की अवधारणा का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें दोनों परंपराओं की तात्त्विक संरचना, नैतिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिक लक्ष्य की सम्यक् तुलना की गई है। अध्ययन का केंद्र त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) और त्रित्व (Father, Son, Holy Spirit) की सैद्धांतिक व्याख्याओं पर आधारित है, जो सृष्टि, नैतिक व्यवस्था, मोक्ष (हिंदू धर्म) तथा साल्वेशन (ईसाई धर्म) की अवधारणाओं को प्रभावित करती हैं। यह शोध-पत्र पारंपरिक ग्रंथों और दार्शनिक विमर्शों के आधार पर यह तर्क प्रस्तुत करता है कि यद्यपि दोनों परंपराएँ ऐतिहासिक रूप से भिन्न सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमियों में विकसित हुई हैं, तथापि वे ईश्वर के स्वरूप, मनुष्य के आध्यात्मिक उत्तरदायित्व और नैतिक परिवर्तनशीलता के प्रश्नों पर एक प्रकार की अंतःसंबद्धता प्रदर्शित करती हैं। प्रदत्त शोध-पत्र का उद्देश्य इन परंपराओं में ईश्वर की अवधारणा को तात्त्विक, नैतिक और व्यवहारिक स्तर पर समझना तथा धर्म-दर्शन के मूल प्रश्न- ईश्वर कौन है और मनुष्य उसके प्रति क्या दायित्व निभाता है, का समग्रता से विवेचन करता है।

मुख्य शब्द : *ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, त्रिमूर्ति, त्रित्ववाद, उद्धार, कृपा, भक्ति, मोक्ष।*

"ईश्वरवाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है- व्यापक अर्थ में और संकीर्ण अर्थ में। व्यापक में ईश्वरवाद उस सिद्धान्त को कहा जाता है जो ईश्वर को सत्य मानता है। इस अर्थ में केवल निमित्तेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद, अनेकेश्वरवाद आदि ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्त को ईश्वरवाद के अन्तर्गत रखा जाता है। परन्तु संकीर्ण अर्थ में ईश्वरवाद एकेश्वरवाद का एक रूप है।"[i] अतएव, उक्त दृष्टि से सामान्यतः ईश्वर के स्वरूप को पाँच प्रमुख आयामों में वर्गीकृत किया जा सकता है: नित्यत्व (शाश्वतता), सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञान, सर्वव्यापकता तथा नैतिक परिमाण। ये तत्त्व ईश्वर को एक तात्त्विक, नैतिक और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में परिभाषित करते हैं। तथापि, इन गुणों की व्यंजना प्रत्येक परंपरा में भिन्न होती है। यह भिन्नता केवल दार्शनिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं रहती, अपितु उपासना की विधियों, मोक्ष की अवधारणाओं तथा सामाजिक-नैतिक आचरण पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

हिन्दू धर्म में ईश्वर की अवधारणा

हिंदू धर्म की परंपरा में 'ब्रह्म' की अवधारणा दार्शनिक केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित है- एक ऐसी परम सत्ता जो अंतिम, निराकार, विकल्पों और नाम-रूप से परे है। उपनिषदों में ब्रह्म को सत्-चित्-आनन्द के रूप में परिभाषित किया गया है, जो न केवल सृष्टि का आधार है, अपितु आत्मा के संयोग का अंतिम लक्ष्य भी है। ब्रह्म के इस स्वरूप की अनुभूति आंतरिक ज्ञान (स्वप्रज्ञा) पर आधारित होती है, जो बाह्य इंद्रियबोध से परे आत्मानुभूति की प्रक्रिया है। इस दृष्टि से ब्रह्म अव्यक्त और सर्वव्यापी है, किंतु जब वही सत्ता अनुभवगम्य रूप में प्रकट होती है, तो वह 'ईश्वर' कहलाती है। यह प्रकट रूप ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य उस असीम सत्ता का साक्षात्कार कर सकता है। अतः ईश्वर ब्रह्म से भिन्न नहीं है, अपितु ब्रह्म की ही सगुण अभिव्यक्ति है, जो उपासना, मोक्ष और आध्यात्मिक साधना के लिए सुलभ और साकार मार्ग प्रदान करती है। हिंदू धर्म की व्यावहारिक एवं लोकधार्मिक परंपराओं में देवताओं की बहुलता एक विशिष्ट विशेषता के रूप में प्रकट होती है, जिसमें पुराणों में वर्णित त्रिमूर्ति- ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता), विष्णु (पालक) एवं शिव (संहारक) को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। इन देवताओं के कार्य सृष्टि, पालन और संहार के रूप में अनुक्रमिक रूप से विभाजित प्रतीत होते हैं। तथापि, शास्त्रीय दर्शन की दृष्टि से यह बहुलता किसी पृथक-पृथक स्वायत्त सत्ता की स्वीकृति नहीं, अपितु एक अद्वितीय ब्रह्म की बहुरूपात्मक अभिव्यक्ति मानी जाती है। देवता, इस विमर्श में, ब्रह्म के विविध रूपान्तर हैं; वे स्वायत्त सत्ता नहीं, बल्कि उस एकमेव तत्त्व की सगुण प्रकटियाँ हैं। इस प्रकार, हिंदू धर्म में बहुदेववाद (Polytheism) और अद्वैतात्मक एकत्ववाद (Non-dual Monism) के मध्य एक गहन तात्त्विक समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जहाँ बहुलता अंततः एकत्व की ही अभिव्यक्ति बन जाती है। यह समन्वय उपासना की विविधता को वैधता प्रदान करता है और ब्रह्म की सर्वव्यापकता व अनन्तता की अनुभूति को भी सुलभ बनाता है।

हिन्दू विचार केवल ईश्वरवादी ही नहीं, बल्कि एकवादी या सर्वेश्वरवादी भी है। ''एकम् सत् विप्राः बहुधा वदन्ति'' का 'एकम् सत्' वैयक्तिक नहीं, बल्कि निर्वैयक्तिक सत्ता है। उपनिषद् में यह 'एकम् सत्' 'आत्मन् कहा गया है, जो जीव का ही नहीं बल्कि बाह्य विश्व का भी मूल तत्त्व है।[ii] सम्भवतः इसी कारण हिंदू धर्म में ईश्वर की संकल्पना एक बहुस्तरीय, तात्त्विक और अनुभवगम्य संरचना के रूप में विकसित हुई है, जिसमें सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की अनुभूतियों के लिए सम्यक् स्थान है। किंतु यही जब भक्त के अनुभव क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो वह सगुण रूप में प्रकट होता है- जैसे विष्णु के अवतार राम और कृष्ण, अथवा शक्ति की विविध रूपों में देवी-पूजा। उक्त रूप धार्मिक प्रतीक हैं और ईश्वर की करुणा, प्रेम और ईश्वरीय हस्तक्षेप के जीवंत उदाहरण भी हैं, जो भक्त को भावनात्मक रूप से संबोधित करते हैं। भक्ति-प्रधान परंपराएँ ईश्वर को प्रेमयोग के माध्यम से प्राप्त करने योग्य मानती हैं। उदाहरणतः, गोपियों की कृष्ण-प्रेम में तन्मयता, या राम के प्रति हनुमान का समर्पण, इस भावात्मक आध्यात्मिकता के आदर्श रूप हैं। यहाँ भक्ति केवल उपासना नहीं, अपितु आत्मा और परमात्मा के मध्य एक जीवंत संवाद है, जो मोक्ष की दिशा में अग्रसर करता है। यह मोक्ष केवल दार्शनिक मुक्ति नहीं, बल्कि भावात्मक एकत्व की परिणति है। वहीं हिंदू धर्म में ईश्वर-संबंधी व्यवहार कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धांत से गहराई से जुड़ा हुआ है। कर्म का सिद्धांत- क्रिया और फल के मध्य नैतिक संबंध और जीवनचक्र को एक तात्त्विक व्यवस्था प्रदान करता है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देते हुए स्पष्ट करते हैं कि कर्म ही मोक्ष का साधन है, यदि वह आसक्ति-रहित और धर्म-संगत हो। पुनर्जन्म की अवधारणा इस नैतिक तंत्र को कालातीत विस्तार देती है, जहाँ प्रत्येक जीवन पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है और आगामी जीवन की दिशा निर्धारित करता है। इस समग्र दृष्टिकोण में ईश्वर केवल एक तात्त्विक सत्ता नहीं, अपितु एक नैतिक, भावात्मक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक है। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ज्ञानमार्ग में ब्रह्म की तात्त्विक पहचान का प्रयत्न किया जाता है, जहाँ ज्ञान ही मोक्ष का साधन है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है; दोनों की अभिन्नता की अनुभूति ही अंतिम सत्य की प्राप्ति मानी जाती है। इस मार्ग में ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति उस परम तत्त्व को पहचानता है, जो सर्वथा एक और अद्वितीय है। वहीं भक्ति मार्ग में ईश्वर को प्रेम और समर्पण के माध्यम से प्राप्त किया जाता है- जैसे तुलसीदास की रामभक्ति या मीरा की कृष्ण-तन्मयता। दोनों ही मार्ग हिंदू धर्म में समन्वित रूप से स्वीकृत हैं, और यह समन्वय ही इस परंपरा की विशिष्टता है। अतः हिंदू धर्म में ईश्वर की धारणा एक समृद्ध, बहुरूपात्मक और समन्वयशील तात्त्विक संरचना है, जो विविध आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को एक ही ब्रह्म-सत्ता की ओर उन्मुख करती है।

ईसाई धर्म में ईश्वर की अवधारणा

ईसाई धर्म का मूल सिद्धान्त त्रित्ववाद (ट्रिनिटी) है, जिसके अनुसार ईश्वर एक ही है पर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के रूप में तीन प्रकार से प्रकट होता है। तीनों में एक ही ईश्वरीय सार (Ousia/Essence) है और हर एक की अपनी पहचान और क्रिया है। इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की एकता और उसके इतिहास में दिखने वाले भिन्न रूप एक-दूसरे से विरुद्ध

नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं: पिता को सृष्टिकर्ता और स्रोत के रूप में देखा जाता है; पुत्र (यीशु) का इतिहास में आगमन उद्धार और नैतिक पुनर्स्थापना का माध्यम माना जाता है; तथा पवित्र आत्मा अंतःकरण में सक्रिय होकर अनुग्रह, परिवर्तन और समुदाय में एकता लाती है। अतः ईसाईयों के प्रमुख धार्मिक ग्रंथ बाइबिल में ईश्वर की अवधारणा एक जटिल रहस्य के रूप में प्रस्तुत की गई है, जिसमें ईश्वर एक होते हुए भी तीन रूपों- पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा में प्रकट होता है, जिसे 'त्रयी में इकाई' और 'इकाई में त्रयी' कहा जाता है। ईसा मसीह का मनुष्य रूप में अवतरण एक दैवी योजना का अंग था, जिसका उद्देश्य मानव जाति के पापों का प्रायश्चित और उद्धार सुनिश्चित करना था। बाइबिल यह बताती है कि परमेश्वर ने आदम और हव्वा को अपने स्वरूप में रचकर उन्हें स्वतंत्रता दी, परंतु उनकी अवज्ञा के कारण पाप की विरासत समस्त मानवता को प्राप्त हुई और परमेश्वर से उनका संबंध विच्छिन्न हो गया। इस टूटे हुए संबंध की पुनर्स्थापना और मानवता के पापों के भार से उद्धार, अर्थात् साल्वेशन प्राप्त करना, ईसाई धर्म का अपरिहार्य लक्ष्य है। यह लक्ष्य आपसी प्रेम और प्रायश्चित के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

"ईसाई-धर्म में ईश्वर को 'प्रेममय' माना गया है। इसीलिए कहा गया है 'The God of Christianity is God of love'। ईश्वर अपने उपासकों से प्रेम की माँग करता है तथा उन्हें अनुराग प्रदान करता है।"[iii] इसलिए, ईसाई धर्म में ईश्वर का मूल स्वभाव प्रेम है, परंतु प्रेम ही ईसाई धर्म की समग्र नैतिक और उद्धारात्मक संरचना का अकेला पहलू नहीं है; न्याय और पाप-निरूपण (Tonement) की अवधारणाएँ भी उतनी ही निर्णायक भूमिका निभाती हैं। यीशु मसीह का ऐतिहासिक जीवन, उनकी शिक्षाएँ, क्रूस पर बलिदान और पुनरुत्थान ही उस धार्मिक कथा के केंद्र हैं जिनके द्वारा ईसाई उद्धार-विचार का तात्पर्य स्पष्ट होता है: ईश्वर का प्रेम केवल स्नेह नहीं, बल्कि न्यायसंगत और उद्धारोन्मुख प्रेम है जो पाप के निहित परिणामों का सामना करके मनुष्य को मुक्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस परिप्रेक्ष्य में क्रूस-घटना को केवल एक इतिहासिक तथ्य के रूप में नहीं देखा जाता, वरन् उसे ईश्वरीय अनुग्रह की निर्णायक अभिव्यक्ति माना जाता है जिससे पाप का बोझ सहन कर उसे न्यून या निर्मूल कर देने का दार्शनिक और दैवीक तर्क स्थापित होता है। उद्धार के इस मॉडल में ईश्वर की कृपा (Grace) केंद्रीय साधन है; यह कृपा उस संबंध की उद्घोषणा करती है जिसके माध्यम से अवमाननीय मानवीय स्थिति में भी पुनर्स्थापना सम्भव है। परंतु यह भी स्पष्ट किया जाता है कि कृपा निःशर्त निष्क्रिय संबोधित नहीं है; विश्वास-केंद्रित जीवन और पवित्रता-प्रधान आचरण अनिवार्य सहायक साधन हैं जो अवसर देते हैं कि अनुग्रह व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक परिवर्तन उत्पन्न करे। पवित्र आत्मा की क्रियाशीलता इस समन्वय को आंतरिक रूप देती है; यह आत्मा विश्वासियों के अंतःकरण में सक्रिय रहकर ईश्वर-सम्बन्धी अनुभूति को उभारती है, पुरस्कार और दण्ड के पार जाकर हृदय में नैतिक संवेदनशीलता और चरित्रिक परिवर्तन लाती है। इसलिए पवित्र आत्मा केवल अनुभव का स्रोत नहीं, बल्कि नैतिक रूपान्तरण और आध्यात्मिक प्राणीकरण की निरन्तर प्रक्रिया का कारक है। इस प्रकार, ईसाई धर्म में प्रेम, न्याय, अनुग्रह, विश्वास और पवित्र आत्मा की क्रिया आपस में सम्बद्ध घटक बनाकर एक समेकित उद्धार-विचार रचते हैं जो व्यक्तिगत आस्था को सामुदायिक जीवन, नैतिक उत्तरदायित्व और ऐतिहासिक घटना के साथ जोड़ता है।

यदि हिंदू और ईसाई धर्म में ईश्वर की अवधारणाओं की तुलनात्मक दार्शनिक व्याख्या की जाए, तो उसमें भिन्नताओं के भीतर निहित समानताओं को रेखांकित किया जा सकता है:

- अस्तित्व-स्वरूप की दृष्टि से, हिंदू परंपरा में त्रिमूर्ति- ब्रह्मा (सृष्टि), विष्णु (पालन) और शिव (संहार) को ब्रह्म के विविध रूपों के रूप में देखा जाता है।[iv] यहाँ ब्रह्म एक अद्वितीय तत्त्व है, जो विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। यह बहुरूपता एक मूल तत्त्व की अभिव्यक्ति है। वहीं, ईसाई धर्म में त्रित्ववाद या त्रेक परमेश्वर के अनुसार ईश्वर एक ही है, पर वह तीन रूपों- पिता, पुत्र (यीशु), और पवित्र आत्मा के रूप में प्रकट होता है। ये तीनों रूप एक अविभाज्य दैवी सार (**Essence**) में अंतःसंबद्ध रहते हैं, अर्थात् वे अलग-अलग कार्य करते हुए भी एक ही ईश्वर के रूप हैं। इससे स्पष्ट होता है कि "हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को एक ही ईश्वर की तीन शक्तियाँ माना गया है। इनको तीन ईश्वर की संज्ञा नहीं दी गयी है। इसी तरह ईसाई धर्म में ईश्वर, पुत्र तथा आत्मा एक ही ईश्वर की तीन शक्तियाँ हैं। तीन ईश्वर नही।"[v]
- क्रिया-प्रकृति के स्तर पर, हिंदू परंपरा में देवताओं की भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से विभाजित हैं- ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं, और शिव संहार करते हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उक्त तीनों कार्य भिन्न होते हुए जीवन के संचालन में सहयोगी ही हैं। किन्तु यह कार्य-विशेषी विभाजन धार्मिक कथाओं और उपासना पद्धतियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वहीं ईसाई त्रित्व में तीनों व्यक्तियों की क्रियाएँ परस्पर सम्मिलित होती हैं- उद्धार की ऐतिहासिक प्रक्रिया में पिता की योजना, पुत्र का बलिदान और पवित्र आत्मा की आंतरिक क्रिया एक साथ कार्य करती है। यहाँ कार्यों का विभाजन नहीं, बल्कि सहयोगात्मक एकता है।
- एकत्व की ओर संकेत (**Monism**) दोनों परंपराओं में किसी न किसी रूप में एकत्व की अवधारणा विद्यमान है। हिंदू दर्शन में यह ब्रह्म-एकत्व के रूप में प्रकट होता है, जहाँ सभी देवता एक ही ब्रह्म के विविध रूप हैं। ईसाई धर्मशास्त्र में यह त्रित्व के भीतर सार-एकता के रूप में देखा जाता है, जहाँ तीन व्यक्तित्व एक ही ईश्वर के रूप हैं।

- हिंदू धर्म में ईश्वर कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत से जुड़ा नैतिक मार्गदर्शक है, जहाँ प्रत्येक कर्म का फल आगामी जीवन को प्रभावित करता है। गीता में यह कर्मयोग के रूप में प्रतिपादित है। ईसाई धर्म में ईश्वर प्रेम और न्याय का स्रोत है, जहाँ पाप, प्रायश्चित और विश्वास के माध्यम से नैतिक पुनर्स्थापना होती है। पवित्र आत्मा आंतरिक रूपांतरण का माध्यम बनती है। दोनों परंपराओं में ईश्वर केवल दार्शनिक सत्ता नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन का आधार है।

इस प्रकार, उक्त विश्लेषण दर्शाता है कि हिंदू और ईसाई धर्म अपने-अपने ढंग से ईश्वर की बहुरूपता और एकता को समझने का प्रयास करती हैं, इस दृष्टि से, दोनों में एक तात्त्विक समरूपता प्रतीत होती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदू और ईसाई धर्म में ईश्वर की संकल्पना भिन्न प्रतीत होते हुए भी एक गहन तात्त्विक समरूपता को प्रकट करती है। हिंदू परंपरा में ब्रह्म की सगुण-निर्गुण अभिव्यक्ति, त्रिमूर्ति और अवतारों के माध्यम से उपासना और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है, जबकि ईसाई धर्म में त्रित्ववाद के अंतर्गत ईश्वर एक होते हुए भी पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के रूप में प्रकट होता है, जो सृष्टि, उद्धार और आध्यात्मिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सहक्रियाशील हैं। दोनों परंपराएँ ईश्वर को केवल तात्त्विक सत्ता नहीं, बल्कि नैतिक, भावात्मक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में देखती हैं; जहाँ हिंदू धर्म में ज्ञान और भक्ति दोनों मार्ग स्वीकृत हैं, वहीं ईसाई धर्म में प्रेम, न्याय और अनुग्रह के माध्यम से उद्धार की संकल्पना विकसित होती है। इस प्रकार, दोनों परंपराएँ ईश्वर की बहुरूपता और एकत्व को समन्वित रूप में समझने का प्रयास करती हैं, जिससे धार्मिक विविधता के भीतर एक आध्यात्मिक एकता की अनुभूति होती है।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****

[i] सिन्हा, डॉ० हरेन्द्र प्रसाद: धर्म-दर्शन की रूप-रेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009 पृ०- 138

[ii] शर्मा, डॉ० सुखदेव सिंह: धर्मदर्शन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1988 पृ०- 83

[iii] सिन्हा, डॉ० हरेन्द्र प्रसाद: धर्म-दर्शन की रूप-रेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009 पृ०- 75

[iv] ब्रह्मसूत्र 1.1.2

[v] मिश्र, डॉ० हृदय नारायण: शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011 पृ०- 104